ईसुरी : प्रस्तुति विधान

-डॉ. साधना कुशवाहा

बुन्देलखण्ड के लोकप्रिय कवि ईसुरी का जन्म विक्रमी संवत् १८९५ में उत्तर प्रदेश के झाँसी के मऊरानीपुर के मेंढकी गाँव में हुआ था। ईसुरी नाम से लोकप्रिय कवि का पूरा नाम हरताल ईसुरी था। यह आधुनिक हिंदी साहित्य के पुरोधा रचनाकार भारतेंदु हरिश्चन्द्र के समकालीन थे। इनके गीतों जिसे 'फाग' से जाना जाता है में लोक की खुशबू है, वह लोक जो ग्रामीण जन, संस्कृति, प्रकृति और व्यवहार से जीवन पाता है। ईसुरी की रचनाएँ आज भी बुन्देलखंड, विन्ध्य क्षेत्र में बहुत लोकप्रिय हैं और यह लोकप्रियता सभी आयु वर्ग में देखने को मिलती है लेकिन विशेष रूप से युवाओं में वह चर्चित कवि हैं। इनकी रचनाओं द्वारा उनके व्यावहारिक ज्ञान और लेखन क्षमता का अंदाजा सहज लगाया जा सकता है। ईसुरी की लेखनी में बुंदेली लोकजीवन की सरलता और सहजता के दर्शन होते हैं जिसमें प्रेमयुक्त संस्कृति और रसपूर्ण रागनी की माला है उनके बारे में गौरी शंकर द्विवेदी जिन्होंने ईसुरी के फागों का प्रथम संकलन तैयार किया था, लिखते हैं- "ईसुरी की रचनाएँ प्रगतिवर्धक जीवन श्रृंगार, सामाजिक परिवेश, राजनीति, भक्तियोग, संयोग, वियोग, लौकिकता शिक्षा चेतावनी, काया, माया पर आधारित है।"[1]

ग्रामीण संस्कृति की सुन्दरता उसके प्रेमपूर्ण रूप का इतिहास इनके फागों से जाना जा सकता है। इन फागों में प्रेम, करुणा, श्रृंगार, सहानुभूति, प्रेम की पीड़ा, हृदय की अवस्था और अनुभूतियों का जीवंत चित्रण है। ये फाग केवल कोरे शब्द नहीं बल्कि हृदय तक पहुँचकर उसको छूने और विचलित करने की क्षमता रखने वाले सजीव रूप हैं। जो उन्होंने अपनी काल्पनिक प्रेमिका 'रजउ' को ध्यान में रखकर, उसको सम्बोधित करते हुए लिखे हैं। अपनी इस कल्पना को शब्दों के द्वारा साकार किया है जिसके लिए उन्होंने लोकनिंदा का भी सामना किया। दरअसल जिस 'रजउ' को वह प्रेम करते हैं, जो उनकी लेखन शक्ति का आधार है वह भौतिक जगत में हो या न हो इसकी उन्हें परवाह नहीं। तभी ईसुरी की रजउ के भौतिक अस्तित्व को लेकर आज तक रहस्य का ही पर्दा है- यथार्थ में रजउ का होना न होना इतिहास और इतिहासकारों की विषयवस्तु है। जहाँ तक साहित्य और साहित्यिक सरोकारों का प्रश्न है तो ईसुरी के काव्य में रजउ असंदिग्ध रूप से विद्यमान है। वे उसे उसके युवा होने के पूर्व से जानते हैं। रजउ का कैशोर्य जब युवावस्था की दहलीज पर दस्तक देता है तो ईसुरी कहते हैं-

आ गई रजउ पे भरदर जवानी, दुनिया देख ललानी,

हुमसे फिरत ओड़नी, ऊपर, छतरी सी धर तानी

जो मिल जात गैलखोरन में, देखत ही मुसकानी

ईसुर कैयक फिरत पियासै, कबे मिले जो पानी।

और तो और, ईसुरी सार्वजनिक रूप से यह कहते हैं- 'हम लएं रजउ की खिदमतगारी, जई वृति हमारी।' ऐसी जनश्रुति है कि ईसुरी की रजउ जागीरदार की बेटी थी जिसके प्रेम में वे अपनी आत्मा के तल तक रंगे हुए थे। ईसुरी के प्रेम का प्रतिउत्तर या रजउ की ईसुरी के प्रति चाहत का कोई लिखित प्रमाण नहीं है। स्थूल रूप में तो यह 'इश्के मजाजी' या सांसारिक प्रेम ही दिखाई देता है लेकिन यह 'इश्के हकीकी' या आध्यात्मिक प्रेम भी हो सकता है क्योंकि ईसुरी के काव्य में जहाँ-तहाँ नश्वरता के स्वर भी उठते हैं-

जिदना खतम होत वईखाता बुलवा लेत विधाता,

धरी पलक की देरी नाहीं सत्य हिसाब कराता

या

तन को तनक भरोसो नइयाँ राखे लाज गुसंइयां

आओ अमरोती की खाके ई दुनिया में आके

तरवर पत्र गिरे धनी में फिर ने लगत डरइयां

जर वर देह मिले माटी में चुने ने राख चिरैयां

जा नर देह काम न आवे पशु की बनत मनैयां।

जहाँ-जहाँ उनके काव्य में ऐसे नाद उठते हैं तो उनके आध्यात्मिक चिंतन के प्रमाण सहज ही सामने आते हैं। ऐसे चिंतन की आधारभूमि पर खड़े होकर इससे भी इंकार नहीं किया जा सकता है कि रजउ उनकी काल्पनिक प्रेमिका ही रही हो जैसे कि शेक्सपीयर की 'डार्कलेडी' उनके काव्य की प्रेरक शक्ति थी या चण्डीदस की 'डोम' या धोबन प्रेमिका जिसका नाम 'रामी' था। पूजन अर्चन करते-करते सही इंसान कर दिया न जाने किस रामी ने।

ईसुरी की रजउ रामी भी है, डार्कलेडी है या पंडित जगन्नाथ की यवन प्रेमिका भी है या बीथोवन की सिम्फनी से निकलने वाली अप्रतिम और अलौकिक धुन की प्रेरक शक्ति 'एंथनी बेंतानी' की तरह रजउ भी ईसुरी को प्रेम की व्यापकता प्रदान करती है, और प्रेरक कारक शक्ति के रूप में उनके काव्य में अक्सर दिख जाती है। ईसुरी की रजउ न केवल ईसुरी के लिए ऐन्द्रिक थी अपितु उसका अप्रतिम सौन्दर्य तत्कालीन समाज में चर्चा का विषय भी था। इतना कि-

कइयक हो गए छैल दिवानें, रजउ तुमारे लाने

भोर-भोर लों डरे खोर में, घर के जान सयाने

दोउ जोर कुंआ पे ठाड़े, जब तुम जातीं पाने

या

सब कोउ रजउ खो देखन दोरे

रजउ न देखत ओरें

यानी हमेशा की तरह साकी पर सबकी नज़र है और उस समय भी थी, साकी पर सबकी नज़र होना स्वाभाविक है लेकिन सब पर साकी की नज़र होना भी जरूरी नहीं है। तभी तो रजउ को देखने सभी दौड़ पड़ते हैं पर रजउ उनकी ओर नहीं देखती। रजउ के प्रति ईसुरी का अनुराग उनकी फागों में चतुर्दिक फैला है। यह प्रेम हकीकी या रूहानी था या मजाजी इस पर आधिकारिक रूप से कहना अभी भी और अधिक शोध और अध्ययन की दरकार रखता है। हालांकि ईसुरी के काव्य में उदाहरण दोनों तरह के हैं, कहीं-कहीं कवि रजउ के प्रेम में समर्पण की इस अवस्था पर भी पहुँच जाता है कि-

विधना करि देह न मेरी रजउ के घर की देरी

आउत जात चरन की धूरा लगत जात हर बेरी।

जाते लगत चरन की धूरा, कुगत सुधरती मेरी।

वह सरेआम यह उद्घोष कर रहा है कि भगवान मेरी देह रजउ के द्वार की देहरी क्यों न बनाई आते-जाते उनकी चरण रज हर बार मुझे लगती। मैं उनके चरण कमल भेंटता तो मेरी दुर्गति सद्गति में परिवर्तित हो जाती। प्रेमी रजउ के द्वार की देहरी होना चाहता है। यह समर्पण का चरम है यहाँ ईसुरी का प्रेम 'मेटेरियल लव' या लौकिक प्रेम नहीं रह जाता, बल्कि प्रेम की यह स्पृहा उसके प्रेम को 'प्लूटोनिक लव' के लोक में खड़ा करती हैं। फाग के इस अंश में कवि का प्रेम ऐन्द्रिकता के धरातल से उठकर, लोक के धरातल से उठकर अलौकिकता की दिशा में जाता प्रतीत होता है जिसका वर्णन एक मुंह से करने में ईसुरी स्वंय को असमर्थ मानते हुए कहते हैं-

हमपे एक मुख जात न वरनी, रजउ तुमारी करनी

जां ठाड़ी हो जाती जाकें दिपन लगत व धरनी

इतें नक्षत नई पुक्खन में, नई भद्रा नहं भरनी

आई हो औतार मांग भव, तीनताप की हरनी

धन्न तुमारे भाग ईसुरी कोउ तरें बैतरनी।

रजउ ईसुरी के लिए दैवीय अवतार की तरह थी ऐसा अवतार जिसकी दीप्ति से पुख्य भद्रा और भरिणि जैसे नक्षत्र भी फीके पड़ गए हैं। वह दैहिक, दैविक और भौतिक तीनों तापों का हरण करने वाली भी है। यहाँ यह भी रेखांकित करना महत्त्वपूर्ण है कि रजउ के सौन्दर्य से प्राप्त लगभग 360 फागें ईसुरी ने लिखी हैं-

जोतें रजउ के मों की जागें, चकचौंदी सी लागें।

कौंदन जागी बिजरी जैस, श्याम घटा के आगें

सूरज अटा पै छूटे, देखत ही रथ मागें

कहीं तीन सौ साट ईसुरी रजउ की फागें।

ईसुरी द्वारा सृजित यह फाग साहित्य वस्तुतः गेय रूपक है। ऐसे रूपक जो लोक में प्रचलित नृत्य के साथ अपनी पहचान को और अधिक अर्थवान और प्रामाणिक बना देते हैं। बुन्देली फाग में राई नामक नृत्य होता है जिसे आप बृज के रास के भी निकट मान सकते है। राई बेड़नी नाचती हैं और गायक दल नगड़िया, मजीरा, ढोलक के साथ सहगान के रूप में साथ गाते हैं। फाग के लोकगायक अक्सर पुरुष होते हैं। माघ मास की बसंत पंचमी से चैत्र की रंगमंचमी तक फाग के फड़ जमते हैं। फाग और ईसुरी रजउ और ईसुरी, राई और बेड़नी ये सब एक-दूसरे के पूरक हैं।

ईसुरी के लिए रजउ का प्रेम एक तल्लीनता थी, ऐसी तन्मयता थी जो एक मुख्तसर से लम्हे को नातमाम अरसे में तब्दील करने में समर्थ है और यह सच भी है कि ईसुरी अंत तक एक लम्बे अर्से तक रजउ की चाहत में नाना प्रकार की यातनाएँ सहते रहे-

जा भई दसा लगन के मारे, रजउ तुमारे द्वारे

जिन तन फूल छड़ी न लागी, उनपे चली तलवारें

हमतो टंगे नीम की डारन, रहुआ करें बहारें

ठाड़ी हती चोखट से, अब भई ओट किबारे

का कहें यार अकेले ईसुर सबरो गांव उतारें।

ईसुरी को रजउ के प्रेम का प्रतिदान रूपी सुख कभी नहीं मिला, बल्कि उन्हें सार्वजनिक रूप से यंत्रणा से भी गुजरना पड़ा और बात यहीं समाप्त नहीं हो जाती। रजउ के व्यवहार से आहत होकर ईसुरी यह तक कह उठते हैं-

तुमने प्रान जनम भर खाए, कभऊं न अंतस चाए

सुख के लाने संग होत है तुमने दुखर दिखाए

केउ बरस के बारह मइना, बातन में बोराए

उठके मिली न आदर कीनो केउ बेर घर आए

ईसुरी को इस बात का भी मलाल है कि उसकी माननी प्रिया ने उसके घर जाने पर भी कभी उठकर उसका आदर नहीं किया उसे नाको चने चबवा दिए। रजउ के इस रूखे व्यहवार से दुःखी ईसुरी ने एक फाग में यहाँ तक कहा है-

फट गऔ रजउ करेजो बातन

कुटिल कपट की कातन

तुमसे कड़ गऔ चित हमारो

देखें चलन तुमारौ।

कहने को तो कवि रजउ से कह देता है कि तुमसे हमारा चित्त फट गया है लेकिन ईसुरी की यह घनेरी पीर बाद की लिखी फागों में हरहराती-सी है। कह देने मात्र से रजउ चित्त से नहीं उतरती, बल्कि वह पीड़ा के रूप में भी ईसुरी के काव्य में बनी रहती है। वियोग में वह कह उठता है-

हम खों रजउ की विछुरन व्यापी।

कड़त नई जी पापीं

भरभरात के प्रान फिरत हैं, थर थर देइया काँपी।

को जाने लएँ रात प्रान खों, सिर पे मौत अलापी ।।

बुंदेली लोक के कवि ईसुरी ने केवल 'रजउ' पर ही नहीं लिखा, उनका सम्वेदनशील मन और हृदय आम जन, गरीब-किसान जन के लिए भी चिंतित रहता था। इसे एक उदाहरण के द्वारा समझा जा सकता है-

"पर गए इन सालन में ओरे! कऊँ भौत कऊं थोरे !

आंगे सुनत परत से दिनकें अब दिन चार चबोरे ।।

कोनउ ठीक कायदा ना रए, धेरै विधाता तोरे ।।

कैसे जियत गरीब गुसा में, छिके अन्न के दोरे ।।

'ईसुर' कैउ करे है ऐसे, कंगाली में कोरे ।।"[5]

उपरोक्त पंक्तियों में कहा है कि इस वर्ष ओले पड़ गए, कहीं थोड़े और कहीं ज्यादा। सुनते हैं पहले वे दिन में पड़ते थे किंतु अब दिन रात गिर रहे हैं। ईश्वर के कोई नियम-कायदे नहीं रह गयें हैं। भाव यह है कि इस ओलावृष्टि के कारण गरीब आदमी की कैसे बसर होगी, वो कैसे जिएगा? अनेक लोग इसी कारण कंगाल हो गए हैं अर्थ यही है कि उनके पास जो कुछ भी बचा था, समाप्त हो गया है।

संक्षेप में लोककवि 'ईसुरी' केवल बुदेलखंड के नहीं भारतीय मिट्टी में मौजूद 'लोक' के कवि हैं। वो लोक जो यहाँ की प्रकृति- खेत, खलिहान, पेड़, पौधे, मिट्टी, जल और जन सभी में मौजूद है। उनकी रचनाओं में निहित प्रेमतत्त्व केवल उनका नहीं बल्कि जन का जन के प्रति इस कोमल भाव को सहेजने का प्रयत्न है। इसी प्रेमतत्व और लोकतत्व के कारण 'ईसुरी 'अपने कवि लगते हैं, यही अपनापन उन्हें हमेशा प्रासंगिक बनाए रखेगा।

संदर्भः

1. लोक साहित्य एवं लोक संस्कृति, संपादक- डॉ. राजकुमार सिंह, प्रकाशन कानपुर, 2012

2. ईसुरी की फागेंः घनश्याम कश्यप, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, 1983

3. ईसुरीः लोकेन्द्र सिंह नागर, मध्यप्रदेश आदिवासी लोक कला परिषद, भोपाल, 1986

4. बुंदेली का फाग साहित्यः श्यामसुंदर बादल, मध्यप्रदेश आदिवासी लोक कला परिषद, भोपाल, 2000

5. https://www.hindwi.org/poets/isuri/a।।

-डॉ. साधना कुशवाहा

सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग,

स्वामी श्रद्धानंद महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली